पंचम अध्याय : "दिव्या" उपन्यासके पात्र" पृ. ११६ से १४९

स्वरूप

चरित्र चित्रण के आधार

उपन्यासमें प्रमुख और गौण नारी पात्र

अ] प्रमुख नारी पात्र

"दिव्या"

ब] गौण नारी पात्र

१. मल्लिका

२. सीरो

३. रत्नप्रभा

उपन्यास के प्रधान और गौण पुरुष पात्र

अ] प्रधान पुरुष पात्र

१. पृथुसेन

२. रूद्रधीर

३. मारिश

ब] गौण पुरुष पात्र

१. प्रेस्थ

२. महापंडित धर्मस्थ देवशर्मा

३. चीबुक, प्रतुल, भुधर, चक्रधर

निष्कर्ष

पंचम अध्याय

स्वरूप

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। याने साहित्य समाज से अछूता नहीं रह सकता। समाज अनेक व्यक्तियों का मिलाजुला संघटन होता है। इसलिए साहित्यकार अपने साहित्य विभिन्न व्यक्तिचित्रों को रेखांकित करता है। उपन्यास अपने कथ्य के अनुसार पात्रों का चरित्र-चित्रण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से करता है। हिन्दी महान विभूति प्रेमचंद ने कहा हैं कि - "उपन्यासको मानव चरित्र का चित्र-मात्र समझता हूँ।"[1] बेकर ने भी "गद्यमय कल्पित आख्यानद्वारा जीवन की व्याख्या बतायी है।"[2] मानव चरित्रके भिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना उपन्यासकारका कर्तव्य हैं। इस दृष्टिसे यदि उपन्यासका विषय मनुष्य हैं, तो चरित्र-चित्रण उपन्यासका महत्वपूर्ण तत्व है। उपन्यासोंमें पात्रोंका होना उतनाही आवश्यक हैं, जितना शरीर के अंतर्गत प्राण। और मनुष्य का अस्तित्व तो उसके अपने चरित्रमें होता है। बिना चरित्र के मनुष्य के भाग्य का विधान स्पष्ट किया नहीं जा सकता चरित्र-चित्रण के ही माध्यमसे उपन्यासकार अपना जीवन दर्शन प्रस्तुत करता है और पात्रोंमे प्राण डालकर उन्हे जीवन के उत्कर्ष-अपकर्ष, घात-प्रतिघात आदि सहने के हेतु संसारमें छोड़ देता है। उनके मानसिक आवेगों, विचारो तथा प्रवृत्तियों आदि का मौलिक विश्लेषण चरित्र-चित्रण के माध्यमसेही किया जा सकता हैं।

प्रतापनारायण टंडण ठीक ही कहते हैं -
" वास्तवमें उपन्यास का मूल विषय मनुष्य और उसका जीवन होता है। पात्र अथवा चरित्र-चित्रण के माध्यमसे उपन्यासकार इस जीवन के विविध रूपोंको उपस्थित कराता है।"[3]

प्रतापनारायण टंडण के अनुसार - "चरित्र-चित्रण के विषय में उपन्यास साहित्यिक विधाओंमें अनेक दृष्टियोंसे महत्व रखता है, इसलिए इसमें उपस्थित मानव चरित्र का स्वरूप भी असाधारण रहता है।"[4]

चरित्र-चित्रण का अभिप्राय यह है कि, कहानी या उपन्यासमें पात्रोंको पर्याप्त मूर्तिमंत और स्वाभाविकता के साथ-साथ इस प्रकार चित्रित करना कि वे पाठकों के लिए छाया-मात्र न रहकर कम से कम उस समय के लिए तो व्यक्तित्व धारण कर ले। उपन्यास एक सृष्टि का ही रूप है। उपन्यासकार पात्रोंका सृजन कर उन्हे उनके पैरोंपर चलने दे। तब पात्रोंका चित्रण स्वतंत्र संकल्प शक्तिसे संचलित होता है।

चरित्र-चित्रण के अनेक आधार है :-

१] कथानक के आधारपर पात्रोंके भेद -
अ] प्रधान पात्र ब] गौण पात्र।
२] प्रधान पात्रमें कथानक को दृष्टिसे -
अ] पुरुष पात्र ब] नारी पात्र।
३] ऐतिहासिक उपन्यास में -
अ] यथार्थ पात्र ब] कल्पित पात्र।

चरित्र-चित्रण के भी विविध गुण है ....

1] अनुकूलता :

यह चरित्र-चित्रण का महत्वपूर्ण गुण है। पात्र कथानक के अनुकूल होने चाहिए।

2] सप्राणता :

ये पात्र कुछ व्यक्तित्व के आधार रहते है। पात्र में जब अनुकूलता, स्वाभाविकता आदि गुण का अभाव नहीं होता तभी इसमें सप्राणता की आशा की जा सकती है।

3] सहृदयता :

इसमें पात्रोंको मानवी होना चाहिए। उन्हे एक-दुसरेसे सहानुभूति और संवेदना की अपेक्षा रखनी चाहिए।

4] मौलिकता :

उपन्यासमें कम से कम प्रत्येक पात्र के व्यवहार, विचार और आदर्शमें मौलिकता का होना जरूरी है।

इस तरह चरित्र-चित्रण कला की और एक विशेषता बताई गयी है कि उसके द्वारा पात्रों के शील-गुणो और अवगुणोंका वास्तविक और स्वाभाविक चित्रण अवश्य हो जाय। घटनाओंकी सृष्टि द्वारा और कथोपकथन के सहारे उनपर अधिकाधिक इस प्रकार प्रकाश डाला जाय कि वह मनोवैज्ञानिक सिध्दान्तोंके बिल्कुल अनुरूप हो। यदि देखा जाय कि तो वास्तवमें चरित्र-चित्रणमें

शील-निरूपण उतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं जितना पात्रों के व्यक्तित्व की पुष्टि करना। मनुष्य का मनुष्यत्व है उसका - व्यक्तित्व उसके कुछ विशिष्ट गुणोंका समन्वय, जो उसे अन्य मनुष्योंसे अलग बनता है। इसलिए पात्रोंके व्यक्तित्व का विकास चरित्र-चित्रण का मुख्य उद्देश्य समझा जाना चाहिए।

तत्कालिन ऐतिहासिक यथार्थ के प्रति पूरी ईमानदारी बरतते हुऐ लेखकने सर्जनात्मक कल्पना का संबल लेकर न केवल एक अत्यंत रोचक एवं महत्वपूर्ण तथा गंभीर समस्याओं और प्रश्नोंको प्रस्तुत करनेवाली कथावस्तु का निर्माण किया है, वरन उतनी ही संपन्न तथा भरी-पूरी चरित्र-सृष्टि भी की है। पुरुष पात्रोंमे जहाँ बैरिस्टर; डाक्टर, मोटर-ड्राइवर, गुण्डे-बदमाश है तो "दिव्या" में कुलाभिमानी पंडित, पुरोहित, त्यागी, भिक्षु, साधिकार सामंत और अधिकारहीन दास और दार्शनिक भी हैं। स्त्री पात्रों में भी विविधता है। नृत्य-संगीत कला-विशारद नर्तकियाँ तथा अभिजात कुमारियाँ, दासियाँ, कुलवधुऐं, वेश्याऐं, कुट्टिनियाँ, फिल्म तारिकाऐं आदि सभी "दिव्या" को यह चरित्र-सृष्टि ऐतिहासिक नहीं है, किंतु वस्तुत: उसमें वास्तविक एवंम सजीव पात्रोंको वह सारी जीवंतता और गरिमा है जो कि एक यथार्थवादी लेखक की कृति में होनी चाहिए।

यशपाल के सूक्ष्म निरिक्षण, व्यापक अनुभव और अध्ययन का प्रमाण विविध पात्रोंको स्पष्ट रूपमें अंकित करने की उनकी शक्ति है। यशपालने पात्रों के चित्रणमें उनकी विशिष्ट परिस्थितियोंकी ओर विशेष ध्यान दिया है, उसका कारण है

कि लेखक पात्रोंके प्रति पाठकों में संवेदना जगाना चाहता है। उनके पात्र जीवनकी सामाजिक और आर्थिक विषमताओंके परिणामस्वरूप संघर्ष, परिवर्तन, और मानसिक अनुताप अनुभव करते हुए अपनी परिस्थितियाँ सहित जो उन्हें विवश करती है, जो "दिव्या" में इतिहास के एक घटनाबहुल कालखंड को यथार्थ संदर्भों में प्रस्तुत किया गया है। पात्रोंकी अधिकता कथावस्तु को बोझिल न बनाकर विवेच्य युगके सार्थक उद्घाटनके लिए अनिवार्य थी।

यशपाल के कथानकों में परिस्थितियोंकी प्रमुखता है, परिस्थितियाँ और घटनाओं द्वारा ही कथानक आगे बढ़ते है। यह पध्दति प्राचीन उपन्यास-कला की दृष्टिसे भले ही उत्कृष्ट हो आज के उपन्यासोंमें यह विधा दोष के रूपमें भी ग्रहण की जाती है। किंतु घटनाएँ प्रधान होनेपर भी चरित्र-चित्रण गौण और अस्पष्ट नहीं हुआ है। "दिव्या" में तो बिलकुल ही नहीं। परिस्थितियाँ और घटनाओंके घात-प्रतिघातों द्वारा "दिव्या" का चरित्र और भी उज्वल और प्रस्फुटित हुआ है।

"दिव्या" उपन्यास के पात्रों का चरित्र-चित्रण निम्नानुसार दिया जा रहा है।

कुछ विद्वानों के मतानुसार यशपाल की "दिव्या" पात्र चरित्र-चित्रण की दृष्टिसे वाल्टर स्काट के ऐतिहासिक उपन्यासोंकी तरह है। जिसमें ऐतिहासिक परिवेशमें आधुनिक चरित्रों की निर्मिती है। ये पात्र रहन-सहन, पोषाख, भाषा आदि की दृष्टिसे ऐतिहासिक या यों कहे कि प्राचीन है, ऐतिहासिकता का

अभाव कराते है, इसी दृष्टिसे वे सफल ही कहे जा सकते है। यशपाल का प्रस्तुत उपन्यास वातावरण प्रधान होनेके कारण चरित्रोंमें पर्याप्त सूक्ष्मता का अभाव है। यशपालने उपन्यासमें दास, सामन्त पुरोहि, नर्तकी, दासी, कुलवधु, वेश्या आदि समाज के विभिन्न वर्गोंके पात्र चुन लिये हैं। इन पात्रोंको विभिन्न संघर्षोंसे उभारा है। प्रासंगिकपात्र प्रासंगिक ही रह जाते है। प्रेमचंद और शेक्सपीअर के पात्रों की तुलनामें यशपाल के पात्र वे प्रभावहीन नजर आते है। मॉरिशा का व्यक्तिगत रूप निखार है ; शेष पात्र किसी न किसी वर्ग का प्रतिनिधित्व कर सामने आते हैं।

प्रास्ताविक :

नारी समाजशील प्राणी है। समाज में रहते हुए उसका पुरुष से कई रूपोंमें सम्बन्ध स्थापित होता है। इनमें यौन सम्बन्ध प्रमुख है। लैंगिक भूख को तृप्ति कर लेने के लिए स्त्री पुरुषों को एक-दूसरेपर निर्भर रहना पड़ता है। अत: जैविक एवं मानसिक दृष्टिसे दोनों में एक-दूसरे के प्रति आकर्षण बना रहता है। किंतु जिस सिमातक इस आकर्षण में सामाजिक मान्यता बनी रहती है, उस सीमा तक ही यह आकर्षण बना रहता है। जब सामाजिक मान्यता के विरोधी स्त्री-पुरुष सम्बन्ध समस्या बनकर खड़े होते हैं। तब यौन समस्या के रूपमें उभारते है। फलत: उसके दुष्परिणाम दोनो में से एक को या कभी दोनों को भी भुगतने पड़ते है। समाज यौन सम्बन्धोंको कई बार प्रेम के नामसे पुकारता है। अत: यह समस्या प्रेम और यौन की समस्या बन जाती है।

"दिव्या" उपन्यास के प्रधान और गौण नारी पात्र

प्रधान पात्र

१] "दिव्या" :

"दिव्या" यशपालजीका एक समस्याप्रधान ऐतिहासिक उपन्यास है। "दिव्या" में बौध्द कालीन भारतीय नारीका वर्णन है।

साम्यवादी धारा के प्रबल समर्थक यशपालने इस उपन्यास में बुद्धकालीन भारतीय नारी की स्वच्छन्दता की कामना का चित्रण करते हुए "दिव्या" के असफल प्रेम कहानी को प्रस्तुत किया है। दिव्या आत्मनिर्भर बनना चाहती है। पुरुष दासता की श्रृंखलाएँ तोड़नेके लिए विद्रोहिणी बनती है। अर्थात बौद्ध कालमें नारी की यह स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता संदेह पैदा करती है। तत्कालीन समाजमें नारी भोग की वस्तु थी, उसकी बाहय स्वाधीनता इस सत्य को छिपा न सकती थी। दिव्या ने इसके विरुध्द विद्रोह किया। "प्राचीन काल में नारी आज की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र थी किंतु स्त्री की इतनी स्वच्छंदता का चित्रण तो संस्कृत नाटकोंमें भी नही मिलता। दिव्या का चरित्र-चित्रण यशपाल की असाधारण विजय है।"[5] अर्थात बौध्द काल में नारी की यह स्वतंत्रता एवं स्वच्छंदता का संदेह पैदा करती है। किन्तु वर्तमान काल के प्रभाव से लेखक द्वारा चित्रित विद्रोहिणी नारी सार्थक प्रतित होती है। किन्तु यह भी सत्य है कि समाज के विधि-विधानों, एवं रुढी मान्यताओं के विरुध्द चलनेवाले का जीवन विभिषिकाओं के गर्भमें

फंसकर दिव्या की तरह हालत होती है।

यशपालजी "दिव्या" के चरित्रमें अन्य नारी पात्रों की अपेक्षा अपनी औपन्यासिक कला को सृष्टि अधिक प्रौढ़ रूपमें कर सके है। "दिव्या" केंद्रीय पात्र है जो नारी जाति के प्रतिनिधि रूपमें प्रस्तुत की गई है। "वह नारीकें परंपरागत शोषण की जीती जागती मिसाल है, और अपने जीवन के द्वारा इस तत्थ्य को प्रतिपादित करती है कि जब तक समाज व्यवस्था आमूल बदल नहीं जाती तब तक नारी जाति शोषण से मुक्त नहीं हो सकती।"[6]

प्रेम एक नशा है, इस नशामें किसी रुढ़ि-नियमों के बंधनोंका खयाल नहीं रहता है। दिव्या सामाजिक रुढ़ि परंपरा-ओंको चुनौती देती हुई पिता को कहती है - " तात और संपूर्ण प्रासाद जान लें, आर्य पृथुसेन के अतिरिक्त मैं किसीसे विवाह न करूँगी।"[7] किन्तु देवशर्मा दिव्या के आग्रह पर भी अपना निर्णय देनेमें हिचकिचाते हैं और बात टल जाती है।

दिव्या के जीवन में समाजद्वारा विवाह के लिए स्वीकृति मिलने से पहलेही वह पृथुसेन को अपना तन-मन अर्पण करती है। फलत: विवाह के पूर्व ही वह गर्भवती होती है और उसे दयनिय अवस्था का शिकार बनना पड़ता है। ब्राह्मण श्रेष्ठ धर्मस्थ की पौत्री "दिव्या" का प्रेमी हृदय जाति-बन्धन का तिरस्कार कर दास-पुत्र पृथुसेन की ओर बढ़ जाता है। परंतु समाज-निर्मित मिथ्या मान्यताओंके कारण उसे संघ तथा राज्यके द्वारों से निराश लौटकर दासी-जीवन की यंत्रानाओंको सहन करना पड़ता है।

अपनी दयनीयता का कारण समाजही है यह जानकर दिव्या के मनमें सामाजिक बंधनोंके खिलाफ विद्रोह पैदा होता है और उसमें स्वतंत्रा बननेकी इच्छा, शाश्वत होती है। "भारतीय नारी का यह प्रतीक जीवनका वास्तविक अर्थ खोज रहा है। उसकी सच्चाई और निष्ठा के सामने पाठक का मस्तक झुक जाता है। पथपर निरन्तर ठोकरे खाकर भी वह अपने प्रति ईमानदारी नहीं छोड़ती। अन्त में वह इसी नतीजे पर पहँचती है कि जीवनमें गहरे पैठना ही जीवन का परम लक्ष्य और उसकी सार्थकता है।"[8]

"दिव्या" का मूल्यांकन न बौध्द धर्म कर पाता है और न ब्राहमण धर्म ही उसके स्वाभिमान का सम्मान कर सका है। सागल राज्यकी वर्ण-व्यवस्था के अनुसार वह पुरूषकी भोग्या ही बन सकती थी। यशपालजीने मॉरिश के अतिरिक्त मनुष्योंको लोलुप भ्रमरों के रूपमें चित्रित किया है जो स्त्री रूपी पुष्पोंका रस लेने में मग्न रहते है। नारी के प्रेम और हृदय को खिलौना समझकर उससे खिलवाड़ करते है। साधारण जन-समुदाय को भी नारी के लिए यही भावना रहती है। "दिव्या" को वृध्दा के शब्दोमें - "और क्या ऐसी संकट बेला में कुलवधू क्या अज्ञात पुरूषोंसे भरे पथपर जाती है ?.... बेटी, युवती को पुरूष से सदा आशंका है। इस वृध्दावस्थामें भी निर्जन पथपर पुरूष को देख मेरे रोम कॉप जाते है। यह सागल नगरी युवतियोंके लिए बीहड़ वनसे अधिक भयानक है। यहाँ के छलियाँ पुरूष नारी मांस के विकट आखेटक है।"[9]

यह वृध्दा स्वयं ही छल-प्रपंच से फसाकर भोली-भाली नारियोंका व्यवसाय करती है। जब इसपर सन्देह होता है तब दिव्या

कर भी क्या सकती है। अन्त में ब्राहमण की बेटी दिव्या को हम दासी वृत्ति करते पाते है। दिव्या के शब्दोंमें -नारी-हृदयाकी वेदना कितनी स्पष्टता के साथ व्यंजित हो उठी है। वह धाता से कहती है - " धीर, रुद्रधीर कोमल पृथुसेन, अमात्य मारिश और मातुल वृक, नारी के लिए सब समान है। जो भोग्या बनने के लिए उत्पन्न हुई है, उसके लिए अन्यत्र शरण कहाँ ? उसे सब भोगेंगे ही, भय किससे नहीं ? क्या तात से भय नहीं ? महापितृक से भय नहीं ? वे मुझे आर्य रुद्रधीर को देना चाहते थे। स्वेच्छासे पृथुसेन को अर्पण किया उसका फल यह है।"[10] वेश्या नर्तकी बन जानेपर दिव्या की प्रसिद्धी बढ़ती है। आचार्य रुद्रधीर दिव्याको आचार्य कुलकी महादेवी पदपर प्रतिष्ठित करना चाहते है किंतु दिव्या अस्वीकार करते हुए कहती है - "आचार्य दासी को क्षमा करें। दासी हीन होकर भी आत्म-निर्भर रहेगी।"[11]

परिस्थिति की माग के अनुकूल गणराज्य की सर्वोत्तम उपाधि "सरस्वती पुत्री" से सम्मानित राजकुमारी दिव्या दासी वेश्या एवं नर्तकी तक की यात्रा कर यमुना में कूद मरने के लिए विवश होती है। जिस प्रकार दिव्या के प्रेमनाशकी सीरो जिम्मेदार नहीं उसी प्रकार उसकी शादी की अनुमती न देनेवाले उसके पिताभी नहीं और न वास्तविकता को अलक्षित करनेवाला पृथुसेन भी, दिव्या की दुर्दशा का जिम्मेदार है सामाजिक बंधन। जातिगत एवं धर्मस्त बंधनोंने अगर दिव्या और पृथुसेन के विवाह को स्वीकृति दी होती तो दिव्या के जीवन का इतना मजाक न होता।

यशपाल का यह समाधान एकांगी है। किन्तु यह स्वीकृत सत्य है। यशपालने ब्राहमण धर्म के अनुसार नारी का भोग्या

रूप अंकित किया परंतु उस मनोभूमिका चित्रण नहीं किया जहाँ नारी अर्धांगिनी मानी गई है, जहाँ नारी के अधिकार पुरुषोंके समान ही सुरक्षित है। यशपाल हिन्दी के प्रगतिशील लेखकों में से है। वे साम्यवादी को जीवनानन्द के चरम समाधान रूपमें ग्रहण करते है। दिव्या में भी प्रत्यक्षात उसी तत्व का आग्रह है।

सारांश में वैदिक कालकी स्त्रियाँ किसी न किसी भाँति अपने प्रेमीतक पहुँचने में सफल तो होती थी। किंतु बौध्द काल तक आते-आते विवाह के एवं जाति-पाँति के बंधन कड़े होते गये फलत: प्रियतमा के अपने प्रेमी तक पहुँने के रास्ते बंद हो चुके थे। प्रतिनिधीरूप में यशपाल की "दिव्या" समाज की रुढ़िबद्धता का शिकार बनती है।

गौण नारी पात्र

२] मल्लिका :

मल्लिका राजनर्तकी और कला-अनुरागिणी नृत्य संगीत की आचार्या है। कला कर्मिणी की समस्त विवेक की अनुभूतियाँ उसमें है। उसकी कला के प्रति सारे जन का मस्तक नत है। वह कला की अधिकारिणी होकर भी अपनी कला परंपराकी जीवित रखने के लिए सदैव चिन्तित रहती है।

अपनी पुत्री के निधन के पश्चात कला परम्परा को अध्यात्म पुत्री दिव्या को प्राप्त कर संतोष पाती है। परंतु द्विज

समाजकी संकीर्णता दिव्याकी कला कर्म की उत्तराधिकारिणी बनने नहीं देता। अपनी उत्तराधिकारिणी की चिन्तासे योग्य शिक्षा की प्राप्ति के लिए मल्लिका देश-प्रदेश का पर्यटन कर पुन: दिव्याकी अंशुमाला के रूपमें प्राप्त करती है।

लेकिन दिव्या की प्रतिभा को ब्राह्मणत्व की संकीर्ण तीखी विचारवादियोंने नष्ट भ्रष्ट करदिया है। राजनैतिक दृष्टिसे मल्लिकाका स्थायी महत्व है। द्विज समाजके षड्यंत्र में सम्मिलित होकर वह अपने प्रासाद को गुप्त मंन्त्रालय बना देती है। आश्चर्य है कि मद्र दास-शासन और धर्म के विनाश के लिए द्विज समाजके षड्यंत्रमें प्रासाद दान कराकर मल्लिका को परंपरागत कला भावनाओंका हनन ब्राह्मणत्व की राजनीतिमें किया गया है।

3] <u>सीरो</u> :

"सीरो" का चरित्र "दिव्या" के चरित्र से बिलकुल विपरीत भूमिपर प्रस्तुत हुआ है। दिव्या का चरित्र उसके जीवन की दयनीय और करुण स्थितिसे सम्बन्धित है, जब कि सिरो के चरित्र को लेखकने सामन्तवादी व्यवस्थामें निहित भोग दर्शन के घिनौने रूप को प्रकट करता है। लेकिन सामन्तवादी व्यवस्थामें अनयास प्राप्त सुविधा व्यक्ति को अहंकारी, स्वतंत्र एवं उच्छृंखल बना देती है, इसका प्रमाण सीरो है। "सीरो मद्रके परम भट्टारक गणपति की प्रपौत्रि गणपरिषद संचालक की पुत्रवधु और महा- पराक्रमी सेनापति पृथुसेन की अर्धांगिनी है। →

—— यशपाल और हिन्दी कथा-साहित्य के लेखकने सीरोको अप्रामाणिकविचारोंको आज की "सोसाइटी गर्ल" कहाँ है, सीरो स्वतंत्रतासे किसी एक पुरुष के साथ बंधकर रहना आवश्यक नही समझती है। "वह सबसे अधिक काम्य भोगोंको भोगती और सागल के सबसे अधिक सुंदर युवा पुरुषोंसे आदर्श को आशा करती।"[12] पृथुसेन उसकी उच्छृंखलता का विरोध कर उसे प्रताड़ित करनेका प्रयास करता है, तो वह सर्पिणी की भाँति फुंत्कार कर स्पष्ट कह देती है - " मै तुम्हारी क्रीत दासी नहीं हू। तुम मेरे आश्रित हो, मै तुम्हारी आश्रित नहीं हूँ। मै तुम्हारे पिंजरेमें बध्द सारिका नहीं हू। ..... मेरे लिए संसारमें केवल तुमही एक पुरुष नहीं हो ? तुम जैसे अनेक और तुमसे श्रेष्ठ अनेक! ... यदि तुम मेरा अपमान करोगे तो मेरे लिए विस्तृत जन-समाज है। तुम्हे सेनापति बना सकती हूँ तो दूसरे को भी महासेनापति बना सकती हूँ।"[13]

यशपालजी सीरो के रूपमें स्वतंत्र, चेता, स्वच्छंद एवं वासनामें फँसी नारीको चित्रित करते है। यहाँ प्रश्न निर्मान होता है कि यशपालने सीरो को ऐसा क्यों बनाया ? तो लेखक का उद्देश्य सीरोका स्वभाव, वैक्रिय दिखाना नहीं था, तो तत्कालीन समाज व्यवस्थामें अभिजात वर्ग को, विशेषकर शासक वर्ग की स्त्री का चित्रण करना चाहते है। लेखक के चरित्र को सफलता यह है कि पाठक सीरो के परिपार्श्वमें दिव्या को देख व्याकुल हो उठते।

सिरो के इस चरित्रपर आपत्ति उठायी है। सुरेश-चंद्र तिवारी ने - "सीरो को युरोपीय नारी का रूप माना है।"

सवाल यह निर्मान होता है कि स्वंतत्राता, स्वच्छंदता यौरोपीयमें नहीं है इसलिए इसपर आपत्ति नहीं उठायी जाती।

इस प्रकार सीरी का चरित्रा एक उच्छृंखल, अहंकारी महत्वकांक्षिणी, ईर्ष्यालु नारी का चरित्रा है। उसमें भोग और काम की प्रमुखाता है। ऐसी महत्वकांक्षी, भोगग्रस्त नारी समाजको हेय जरूर लगे परंतु समाजमें यथार्थ रूपमें ऐसी औरते होती ही है, इसे अस्वीकार नहीं किया जाता।

४] <u>रत्नप्रभा</u> :

सामन्तयुगीन समाज व्यवस्थामें अभिजात वर्ग प्राय: विलासी था। सामन्तोने अपने नृत्य, संगीत, शौक पूर्ति के हेतू राजनर्तकी के पदोंको प्रतिष्ठा समाज व्यवस्थामें स्वीकृत की थी। रत्नप्रभा शूरसेन प्रदेशाकी राजनर्तकी है। वह जनपद कल्याणी की उपाधि से विभूषित है। वेश्या जीवन बितानेवाली रत्नप्रभा यदयपि संपन्न और समृध्द है, उसे सुंदर वस्त्रा, आभूषाण, धान दौलत, वैभव सब कुछ प्राप्त है लेकिन वह असंतुष्ट है। वह इसे लक्ष्य न मानकर उपकरण मानती है और स्थाई प्रेम तथा कुलवधूका मधुर स्वप्न देखाकर ही रह जाती है।

लेखाकने रत्नप्रभाके सम्बन्धामें अपने मनमें उठनेवाले विचारोंको इस प्रकार स्पष्ट किया है - "यही है वेश्या के जीवनका विद्रूप। यही है उसकी सफलता, समृध्दि और आत्मनिर्भरता। वेश्या देती है अपना अस्तित्व और पाती है केवल द्रव्य, परंतु कुलवधू अपने समर्पण के मूल्यमें दूसरे पुरुष को पाती है, किसी दूसरेपेमी अधिकार

पाती है। .... वेश्या का जीवन मोटी बत्ती और शाल मिले तेल से पूर्ण दीपक की अनुकूल वायुमें अतिप्रज्वलित लौ की भाँति या उल्कापात की भाँती क्षणिक तीव्र प्रकाश करके शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। "14

मानसिक द्वंद्वमें फंसी रत्नप्रभा एक सरल हृदय और मधुर स्वभावकी नारी है। अपने सौंदर्य, कला, संपन्नता एवं समृध्दिपर उसे गर्व नहीं है। वह दया, ममता, सहानुभूति, करुणा आदि की मूर्ति है। जीवन से निराश दिव्या को जीवन का आनन्द दिखानेवाली रत्नप्रभा का मूल्य किसी दीपस्तंभ से कम नहीं है, इस प्रकार रत्नप्रभा ने सागल पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ रखा है - " रत्नप्रभा के हृदयमें संतोष न था परंतु विश्वास और आशा थी। अपने व्यवसाय से संचित द्रव्य का यथेष्ठ भाग वह यज्ञ-बलि में अर्पण करती थी। उसे विश्वास था, पूर्व जन्म के कर्मफल से उसने इस जन्म में केवल ख्याति और धन पाया परंतु जीवन की पूर्णता से वह वंचित रही । इस जन्म के पुण्य से वह इस पूर्णता को परलोक और पुनर्जन्म में पायेगी।"15

इस प्रकार रत्नप्रभा का जीवन आत्मिक सुख और शांति से शून्य एक ऐसी नारी का जीवन है, जो व्यवस्था की नीतियों में जकड़ी, अभिशाप के भारको ढोने के लिए विवश है। यही विवशता पाठकों को आकर्षित करती हैं लेकिन वे हमदर्दी पाते है।

"दिव्या" उपन्यास के प्रधान पुरुष पात्र

१] पृथुसेन :

पृथुसेन महाश्रेष्टी प्रेस्थ का पुत्र है। जो नायक की दृष्टिसे उसका चरित्र एक प्रेमी के रूपमें, वीर योध्दा के रूपमें और बौध्द भिक्षु के रूपमें प्रकाशचंद्र मिश्र के अनुसार व्यक्त किया है।[16] लेकिन पृथुसेन को "दिव्या" उपन्यासका नायक मानने के संबंधमें रत्नाकर पाण्डेय का मत है कि वह भूल है कि जिसका चरित्र इतना विवादास्पद दैन्यता से पीड़ित है।[17] इसे स्पष्ट करने के पिछे लेखक का उद्देश्य समाज को असामायिक मान्यताओंका विश्लेषण करना है और दुष्परिणाम दिखाना है। अभिजात वंशीय तथा दास वंशीय और ब्राह्मण तथा बौध्द विचारोंकी तुलना द्वारा लेखक ऐसी मान्यताओंको इस रूपमें अंकित करते है कि पाठक उनके प्रति विचार करता रहता है।[18] उसे उपन्यास के आरंभमें साहस और वीरतासे सागल का सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी घोषित किया जाता है। लेकिन दिव्या को शिविका में कंधा लगाते समय रूद्रधीर उसका अपमान करता है - " दास पुत्र को अभिजात वंश के युवकों के साथ शिविका में कंधा देनेका अधिकार नहीं।"[19] इसपर क्रोधित पृथुसेन कहता है - " मेरे अधिकार का निश्चय मेरा खड्ग करेगा।"[20] दास वंश में उत्पन्न होनेपर साहस, वीरता आदि गुणोंसे परिपूर्ण होकर भी ऐसा अपमान तत्कालिन सामाजिक मान्यताओंका जीता-जागता प्रतिरूप है।"[20]

पृथुसेन द्वारा यशपाल मानो सारे समाजसे प्रश्न करते है - "जन्म का अपराध ? यदि वह अपराध है, तो उसका मार्जन

किस प्रकार संभाव है ? शास्त्र की शक्ति, धान की शक्ति, विद्या की शक्ति जन्म को परिवर्तित नहीं कर सकती। जन्म के अन्याय का प्रतिकार क्या मनुष्य दैव से ले ? .... या उससे लें जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए जन्म के असत्य अधिकार की व्यवस्था निर्धारित की है ? हीन कहे जानेवाले कुलमें मेरा जन्म अपराध है ? अथवा यह द्विज कुलमें जन्में अप ~~ लोगोंका अहंकार मात्र है।" 21 और अपमान को सहन करना कायर समझकर संघर्ष करने को चाहता है। इसका जीता जागता उदा. जब प्रेस्थ पृथुसेन को गणपरिषाद की सहायता लेने तथा अवसरवादी बनाने का उपदेश देते है तब उन प्रस्तावोंको अस्वीकार करता है। उसे अपने शक्ति पर भरोसा होनेसे भिक्षा मागने के लिए तैय्यार नहीं है। इसके साथ ही साथ केंद्रस पर आक्रमन, सेना से युध्द और विजय इसकी वीरता का प्रमाण है। यहींसे पृथुसेन का चरित्र सामान्यधरातल की ओर अग्रसर होने लगता है।

एक प्रेमी के रूपमें पृथुसेन का चरित्र प्रभावहीन है। युध्द जानेसे पूर्व सिर्फ दिव्याकों प्रेम का विश्वासहीन देकर विवाह का वचन देकर उसका समर्पण स्वीकार करते हुए उसे दृढ़ रहनेका संकल्प करता है। लेकिन वह इस प्रतिज्ञा को तोड़ना ही नहीं चाहता और सेनापति पद की आशासे पिता प्रेस्थ की आज्ञा तथा प्रेरणा का अस्वीकार न कर सीरो से विवाह कर लेता है और दिव्या जैसी सुशा और साधन सम्पन्न नारी को दर दर की ठोकरें खानी पड़ी। यहाँ प्रश्न उठता है कि " सीरो से विवाह कर पृथुसेन का व्यवहार दिव्या के प्रति कहाँतक न्याय संगत है ? परंतु प्रश्न व्यवहारका नहीं परिस्थितियोंका है और उद्देश्योंका है।" 22 परिस्थितियों के संयोग

और पिता की नीति के बल से वह परिषद संचालक के पदपर पहुँचता है। सीरो से विवाह कर पिता की अभिसंधि और आयोजना से एक और युध्द की घोषणा करके महासेनापति का पद और निर्बाध निरंकुश अधिकार प्राप्त करनेके प्रयत्न षाड़यंत्र में स्वयं फँस जाता है यहाँपर पृथुसेन "प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं, वैवाहीक जीवनमें भी वह असफल है। सीरो की स्वतंत्रता और उच्छृंखल प्रवृत्ति उसे असंतोष और अशांतिके अतिरिक्त कुछ नहीं देती। सीरो के समक्ष वह बिल्कुल निरीह और विवश है। एक वीर योध्दा और सेनापति की यह निरीह स्थिति अवश्य कुछ खटकती है। उसकी यह दुर्बलता उसके प्रति सहानुभूति ही नहीं: उपेक्षा का भाव उत्पन्न करती है।" 23

एक सफल योध्दा होने पर भी पृथुसेन में दुरदर्शिता और राजनीतिज्ञता के अभावसे रुद्रधीर के षाड़यंत्र में फँस जाता है। और निशस्त्र तथा निस्सहाय भाग निकलता है। आश्चर्य इस बातका है कि केंद्रस का विजेता भीरु बन बौध्द-स्थविर कीशरण में भिक्षु रूप धारण करता है। यह पलायन उसकी दुर्बलता का संकेत है।

बौध्द भिक्षु बनने के पश्चात् दिव्या के बहिष्कृत होनेपर प्रताड़ित नारी को धर्म की शरण में लेकर शांति का आमंत्रण देता है - " वाह रे पुरुष, तेरी अहम्मन्यता और अधिकार तू इच्छा होनेपर अपने निर्वाण के लिए नारी को निराश्रित और निरवलम्ब छोड़ संसार की ठोकरे खाने के लिए छोड़ देता है और अंतमें भिक्षु धर्म में मोक्ष के लिए शरण देना चाहता है। यहाँ पर लेखकने धर्म और विश्वास की विडंम्बना कौ स्पष्ट किया है -

जो धार्म आर्त नारी को भी ठुकरा देता है।" 24

"पृथुसेन की यही दुर्बलता शोषित वर्ग के विशिष्ट लोगों में होती क्यों की हीनभावना और पलायनवादिता उन्हे उभारने नहीं देती।"25

"अनेक आलोचकोने कायर बताकर वीर मृत्यु से वंचित किया लेकिन लेखकने - अपने मन के शत्रु को विजि करने के लिए, संसारको युध्द की भीषाणता से बचाने के लिए और सार्वभौम मैत्री कासंदेश देने हेतु ही पृथुसेन को बौध्द धार्म स्वीकार कराया गया।"26

दिव्या की पृथुसेन के प्रति घृणा से उनकी भावना-ओंको अंधाकारमें शीतल धूमकेतु की तरह कहा है। श्री महेंद्र भटनागर पृथुसेन के चरित्र के संदर्भमें यशपाल की कला ठिक तरह न जानने से पृथुसेनकेचरित्र और आचरण संबंधी यशपाल पर आरोप करते है।

समिक्षायण की नैतिकता की दृष्टिसे स्पष्ट है कि "यशपाल अपनी रचना कौशल की कला में पृथुसेन के सन्दर्भ में सत्यत: सबल है।"27

अत: यशपालजीने पृथुसेन का चरित्रांकिरण सूक्ष्मता से किया है। पृथुसेन एक मानी पात्र भी है और बौध्द विचार-धारा का प्रतिनिधी भी है।

२) रूद्रधीर :

कई समीक्षाकोने पृथुसेन को इस उपन्यास का नायक और रूद्रधीर को प्रतिनायक स्वतंत्र बुध्दीसे मान लिया है। आचार्य रूद्रधीर गण-परिषद् के संवाहक आचार्य प्रवर्धन के पुत्र है। रूद्रधीर कुलीन और अभिजात वर्गका प्रतीत तथा ब्राहमण धर्म का प्रतिनिधी है। वह अभिमानी है स्वाभिमानी नहीं। वह वर्ण व्यवस्था का कट्टर समर्थक होने से अपने वर्ग की रक्षा और प्रतिष्ठा के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसे अपनी कुलीनता और ब्राहमण होने पर गर्व है। उसका यह कथन की - " ब्राहमण पृथ्वीपर देवता का अंश है। वह देवता की प्रचंड शक्ति का प्रतिनिधि है।"[28] इसी बातका संकेत है। अपने इसी अभिमान के आधारपर वह अकुलीन पृथुसेन का शोषण तथा वर्गीय स्वार्थोकी रक्षा के लिए पृथुसेन की प्रतारणा करता है - " दास पुत्र को अभिजात-वंश के युवकों के साथ शिविका में कंधा देने का अधिकार नहीं।"[29] सागल के युवकोंका वह नेता है। राजनीति और कुटनीति से काम लेना अच्छी तरह जानता है। इससे ही धर्मस्थान में वह दो सहस्त्र दिवस के निर्वासन दंड का बदला पृथुसेन से न लेता तो उसे अपने षाड्यंत्रका शिकार बनाकर सागल छोड़ देनेके लिए बाध्य किया है। स्वयं शासन की बागडोर हाथ में लेकर ब्राहमण धर्मका उध्दारक, अभिजात संस्कारोंसे ग्रस्त शोषण का रूप है जो जनता की उपेक्षा कर वर्गीय स्वार्थोके लिए प्रयत्नशील है।"[30]

जिस समय दिव्या रत्नप्रभा के प्रासाद में "अंशुमाला" के रूपमें ख्याति प्राप्त कर चुकी थी। वहाँ पहुँचता है लेकिन जिस

समय नृत्य के उपालक्ष्य में भेंट दी हुई मुक्तामाला लौटा देनेपर हृदयने अनुराग का स्थान विरक्ति ने लिया और भावना बदलने पर विप्रकन्या संबोधन करता है - " भद्रे, कांचन की खान से लौह उत्पन्न नहीं हो सकता। वंश और कुल मनुष्य की शक्ति से ऊपर देवता की कृति है। मनुष्य न कुल दे सकता है न छीन सकता है। तुम्हारी धमनियों में मनुष्य का रक्त है। कीचड़ में गिरकर भी स्वर्ण पत्थर नहीं हो सकता।" [31]

"रुद्रधीर का व्यक्तित्व क्षमाशील है जो स्पष्ट है क्यों कि - द्वार पर भिक्षु रूपमें आये पृथुसेन को क्षमा कर देता है और एक पत्नी होते हुए भी दिव्या को अपनी पत्नी बनाना चाहता क्यों कि वह द्विज कन्या को वेश्या बनते नहीं देख पाता। दिव्या के वेश्या और नर्तकी होते हुए भी वह उसे महादेवी के पद पर प्रतिष्ठित करना चाहता है। रुद्रधीर का चरित्र-चित्रण लेखकने सहानुभूति पूर्वक किया है।" [32]

लेकिन दिव्या का मौन उत्तर था - " दासी हीन होकर भी आत्मनिर्भर रहेगी। स्वत्वहीन होकर वह जीवित नहीं रहेगी।" [33] इस उत्तर के सामने ब्राहमणवाद के लालुप प्रतीत रुद्रधीर की सीमित अक्षमता बड़ी ही दैन्य और असामर्थ्य से प्रपीडित निष्प्राण होती है। रुद्रधीर का चरित्र उपन्यासका साध्य पक्ष नहीं वह वर्गवादी मानवता के प्रतीकात्मकता का साधन है।" [34]

"दिव्या" उपन्यास का रुद्रधीर यह पात्र अपनी बारीकि के साथ उभारा है। वह एक रूढीवादी पात्र है। यशपाल ने उसका चरित्रचित्रण स्वाभाविकता से किया है।

३] मॉरिश :

सागल का सर्वश्रेष्ठ मूर्तिकार नास्तिकता और भौतिकता के प्रतिपादन का अपवाद पानेवाले श्रेष्ठी, उपासक पुण्यकांत का पुत्र है। मॉरिश का व्यक्तित्व आदि से अंततक गतिशील है। लेखकने मॉरिश को प्रगतिशील विचारोंका प्रतिनिधी बनाकर प्रस्तुत किया है। सागल का सर्वश्रेष्ट मूर्तिकार और दार्शनिक है। उनका दृष्टिकोन भौतिकवादी होनेसे भोगपर विश्वास कर भौतिक जीवनको सत्य मानता है इसलिए मनुष्य सबकुछ प्राप्त कर भोग सकता है। दिव्या को नृत्य के पश्चात कहता है -

" भद्रे, तुम्हारी कला, तुम्हारी आकर्षण शक्ति का निखार मात्र है जो नारी में सृष्टि की आदि शक्ति है।" [35]
पाठक के मन में उनके प्रति कौतूहल जागृत होता है।

मॉरिश ब्राहमण धर्म की परलोकवादी धारणा पर अविश्वास और बौध्द धर्मका कटु आलोचक है। जीवन के प्रति अटूट आस्था होनेसे निराशा, विरक्ति, और पलायन के स्थानपर संघर्षमय गतिशील जीवन को सार्थक मानकर स्वतंत्र कर्तृ का अनुभव महत्वपूर्ण मानते हुए सागल निवासी शाण्डेय से कहता है -
" पराभूत सजीव होकर भी मृत है, निर्भय हो! जीवन के लिए युध्द कर। मृत्यू भय का अन्त है। जीवन में उत्तेजित हो। कायर मत बन।" [36]

मारिश एक ओर अभिशापोंको भोगनेवाले शोषित वर्गके प्रति सहानुभूति रखता है तो दूसरी ओर शाण्डेय की भाग्यसंबंधी कायरता और नियतिवादी का आलोचक है,

मारिशा उसे कहता है - "तुम मूर्ख हो, तुम समझते हो, सेवा करने के लिए तुम्हारा जन्म हुआ है, वही तुम्हारा भाग्य है ? दूसरे के स्वार्थ साधन के लिए तु मनुष्य नहीं बने हो, उस कार्य के लिए पशु है। ..... मरना है तो अपने मनुष्यत्व और अधिकार के लिए मरो। जो बिना विरोध किए दूसरे के उपयोग में आता है वह जड़ और निर्जीव है, पशु से भी हीन है। .... निराशामें शैथिल्य से पशुत्व मत स्वीकार करो।"[37]

सभी प्रकार के शोषणोंका विरोधी है। नारी पर होनेवाले अत्याचार का विरोधी और नारी जीवन की सार्थकता न समझनेवाले, तथा नारी को भोग्या मात्र माननेवाले समाजपर प्रहार करता है उनके सामने नारी की महानता प्रतिपादित करते हुए कहता है - " नारी सृष्टिका साधन है, सृष्टि की आदि शक्ति एवं समाज और कूल का केंद्र है।"[38]उनकी दृष्टिसे नारी प्रकृतिके विधान से नहीं समाजके विधानसे भोग्या है, वेश्या जीवन को, अभिशाप मानता है। दिव्या के वेश्या स्वतंत्र नारी है। कहनेपर इस स्वतंत्रता को प्रवंचना मानते हुए तर्क देता है - " यदि कुलवधू एक पुरुष की भोग्या है तो जनपद कल्याणी वेश्या संपूर्ण जनपद और समाजकी तृप्ति का साधन है। वह जन की कामना का संकेत देती है और उसके मूल्य में भोगोंका साधन केवल धन पाती है।.... उसकी कला दूसरों के जीवनमें वासना की पूर्ति के अनुष्ठान के रूपमें उपयोगी है, परंतु वह क्या पाती है ? वह काम के यज्ञ का साधन मात्र है। वह स्वयं: पूर्ति के हविष्य से वंचित है। उसकी स्वतंत्रता का भोग जन करता है, वह स्वंय नहीं वह केवल वंचना पाती है।"[39] मारिशा के इस सत्य कथन का प्रमाण रत्नप्रभा का जीवन है।

मारिशा एक चिंतक विचारक और दार्शनिक रूपमें प्रभावित है। मानवीय संवेदनासे युक्त उसकी दृष्टि उसे शोषित पीड़ित मानवता का मसिहा बना देती है। वह परंपरा अंध विश्वास तथा व्यवस्था के कुटिल जाल में फँसी मानवताको तर्क से वास्तविकताका पर्दाफाश नकर पीड़ित मानवता को एक नई दिशा देता है। मानव जीवन के विकासमें बाधक रूढ़ी परंपराको तोड़नेके लिए दृढ संकल्प करता है जो अंतमें दिव्या को अपनी ओ आकर्षित करने के लिए कहता है - "मारिशा देवी को राजप्रासाद में महादेवी का आसन अर्पण नहीं कर सकता। मारिशा देवी को निर्वाण के मिथ्या चिरन्तन सुख का आश्वासन नहीं दे सकता। वह संसारके सुख दुःख अनुभव करता है। अनुभव और विचार ही उसकी शक्ति है। उस अनुभूतिका आदान-प्रदान वह देवी से कर सकता है। वह संसार के धूल-धूसरित मार्ग का पथिक है। उस मार्गपर देवी के नारीत्व की कामना में वह अपना पुरुषत्व अर्पण करता है। वह आश्रय का आदान-प्रदान चाहता है। वह नश्वर जीवन में संतोष की अनुभूति दे सकता है। .... संतति की परंपरा रूपमें मानव को अमरता दे सकता है।"[40] इस प्रकार "मारिशा चार्वाक दर्शन के प्रतिनिधी के रूपमें उपन्यास में प्रस्तुत हुआ है। भौतिकवादी विचारोंसे चार्वाक दर्शन मार्क्सवादी दर्शन से निकट है। अत: लेखकने अपनी भौतिकवादी-मार्क्सवादी विचार धारा को चार्वाकवादी मारिशा के माध्यमसे व्यक्त किया है। जो ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और देशकाल की रक्षा के लिए आवश्यक था।"[41]

मारिशा अति का अपने विचारोंसे आज मार्क्सवादी दिखाई देता है। जो पृथुसेन की तरह महत्वकांक्षी न होकर आशा

और विश्वास से पूर्ण असाधारण व्यक्तित्व सम्पन्न है।"[42] मारिशा के लिए इतनाही कहा जाता है की- उसके तर्क प्रचलित विचारोंसे भिन्न है। परंतु उसका कोई अनुयायी नहीं है, वह अपने मत का अकेला प्रचारक है। लोग उसकी बातोंकी सत्यता से अवश्य प्रभावित होते हैं परंतु उन्हे अंगीकार कर नहीं पाते। शायद वह अपने समयसे बहुत आगें की बाते करता है। मारिशा उस कोकिल के समान लगता है जो बसंत आने के काफी पूर्व शारद में ही कूक उठी हो।"

अंतमें मारिशा ही दिव्या का आश्रयदाता और समस्त कथानक के निष्कर्षका भोक्ता है। वह उपन्यासका सर्वाधिक सशक्त और एकमात्र प्रमुख नायक बनकर हिन्दी के अमर चरित्रों में अपना उच्च स्थान रखाता है।

गौण पुरुष पात्र

४] प्रेस्थ :

पृथुसेन का पिता प्रेस्थ सागल का एक प्रमुख श्रेष्ठि है। प्रेस्थ का चरित्र प्रभावशाली अत्यंत चतुर विनीत और व्यवहार कुशल है। महत्वकांक्षी होने के कारण अभिजात वर्गसे प्रतिद्वंद्विता का भाव रख, दरिद्र रूपवती द्विज कन्या से विवाह कर कुलीन वर्गकी तरह प्रासाद बनवाकर और दास-दासियोंका क्रय करके सामंतो की तरह जीवन व्यतीत करता है।

मद्र में वह सम्पन्न और समृध्द होने के कारण राज-नीतिक क्षेत्रमें सुत्र संचालन करता है। पुत्र का विवाह सिरो से

कराकर गणपति मिथोद्रस का कृपापात्र बन जाता है। फिर धीरे धीरे अपने द्रव्यबल चातुर्य और विनय से राजनीतिक क्षेत्रमें प्रभाव जमालेता है। वह दूरदर्शी और अवसरवादी होने के कारण तथा केंद्रस के आक्रमण के समय, समय का पूरा लाभ उठानेकी दृष्टिसे अपनी कूटनीति से रूद्रधीर को नगर से निकाल दिया जाता है तथा अभिजात वर्ग के साथ संघर्ष भी करना पड़ता है। सामंत कार्तवीर का कथन उपर्युक्त तथ्य की स्पष्ट पुष्टि करता है - " कुटिल नीति के ये बाण सामंत ओक्रिस, इंद्रसेन और सारथी प्रेस्थ के ही हैं। हमारे सभी बलाधिकृतों और सेनापतियों के स्थानपर अन्य बलाधिकृतों और सेनापति पहले से नियत कर और घोषणा द्वारा जन को लुभाकर इन लोगोंने हमें पंगु कर दिया है। कुचक्र में प्रेस्थ कौटिल्य का शिष्य है।" [43]

कालांतरमें प्रेस्थ की महत्वकांक्षा और भी बढनेसे प्रेस्थ वंश के राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता है। पृथुसेन को प्रेरित करता हुआ वह कहता है - "पुत्र एक दास की स्थिती से उठकर मैं इस अवस्थामें पहुंचा हूँ कि मेरा पुत्र सेनापति बनकर महासेनापति बनने की आशा करता है।... मै तुम्हें परम भट्टारक मद्र के गणपति के आसन पर देखना चाहता हूँ, मद्र के छत्रपति राजा के आसन पर देखना चाहता हैं। यदि मगध में शूद्र मौर्य वंश का राज्य स्थापित हो सकता है तो मद्र में प्रेस्थ वंश का राज्य स्थापित क्यों नही हो सकता ?" [44]

सागल की राजनीतिक स्थितियोंमें परिवर्तन लाने और पृथुसेन की सफलताओंके पीछे प्रेस्थ का ही हाथ है। अत:

सागल की राजनीतिक स्थितियोंमें परिवर्तन लाने और पुष्यसेन की सफलताओं के पीछे प्रेस्था का ही हाथ है। अत: महत्वकांक्षी, कूटनीतिज्ञ, चतुर अवसरवादी, धन और पद का लोभी, स्वार्थी और दूरदर्शी प्रेस्था का चरित्र अत्यंत सशक्त और प्रभावशाली रूप में सामने आया है। जो उपन्यास का पात्रोंकी दृष्टीयोंसे स्मरणीय पात्र है।

५] महापंडित धर्मस्थ देवशर्मा -

धर्मस्थ के माध्यमसे यशपालने तत्कालीन ब्राह्मण वृध्द की बौध्दिकता का यथार्थ चित्रण किया है। धर्मस्थ अपनी नैतिकता और न्यायमें अत्यंत महत्वशाली, न्याय,- नियामक के रूपमें चित्रितहै। उनकी ज्ञान गोष्ठीयोंके निर्णायक आयाम में सभी को समान अवसर है। इसीलिए उनके प्रति सागल प्रदेशकी सहानुभूति का प्रदर्शन समस्त जन-मन करता है।

६] चीवुक - प्रतुल -

चीवुक तथा प्रतुल का चरित्र दिव्यामें कथा का विकास करते है। प्रतुल के माध्यमसे उस युग के दास व्यवसाय की प्रथा का चित्र हमारी आँखों के सामने उद्घाटित हुआ है। उसकी कठोरता और निर्दयता के नीचे मनुष्यता दासत्व के पत्थर से दबा दी गयी है।

चीवुक निर्वाण पथके बौध्द भिक्षु के रूप में अपनी पात्रता में, स्वतंत्र, स्वाभाविक चरित्र का उद्घाटक है। चीवुक

वैदयक में निपुण होनेसे युध्द से लौटनेपर पृथुसेन का उपचार करता है। पृथुसेन को निर्वाण मार्ग में आश्रय का श्रेय भी बौध्द भिक्षु चीवुक को है। अन्य पुरुष पात्र दिव्या के कथा निर्माण अथवा कथाक्रम विकास में अनिवार्य साधन बनकर उपस्थित है। प्राय: अधिकांश पुरुष पात्रोंके चरित्र में गतिमित्ता और स्थिरत्व है। उनमें गति-प्रगति को संतुलित प्राणवत्ता का अभाव है। यशपाल ने सभी पुरुष पात्रों में स्वाभाविकता का संस्पर्श प्रदान किया है।

निष्कर्ष :

पात्र एवं चरित्रचित्रण की दृष्टि "दिव्या" उपन्यास माना जा सकता है। प्रमुख स्त्री पात्रोंमें "दिव्या" उपन्यास की नायिका आधुनिक प्रवृत्तिके प्रतिक है , जो समाजकी विषम मान्यता ओं का विरोध करके जीवन के लिए नये आदर्श पाठकोंके सामने रखती है। "दिव्या" प्रगतिशील विचारोंवाली होनेसे आदिसे अंततक क्रियाशील रही है। यह पात्र सिर्फ परिस्थितीयों का सामना न कर परिस्थितियों को प्रभावितभी करती है। आत्म-निर्भरतासे समाजको चुनौती देती हुई पुरुषोंकी दासताको ठुकराकर अपना साथी स्वयं चुन लेती है।

गौण स्त्री पात्रों में सीरो का चरित्र एक स्वतंत्र उच्छृंखल, वासनामयी नारी के रूपमें हुआ है। वह महत्वकांक्षिणी अहंकारी, ईर्ष्यालु, पूंजिवादी, व्यवस्थाकी भोगमूलक प्रवृत्तिका प्रतिनिधीत्व करती हुई दिखाई देती है।

"मल्लिका" का चरित्र राजनर्तकी तथा संगीत आचार्य के रूपमें चित्रित हुआ है, उसका राजनैतिक दृष्टिसे अपना महत्व है। ब्राह्मणत्व की राजनीतिमें मल्लिका की भावनाओंका हनन गणराज्यमें कला की नगण्यताको स्पष्ट करती है।

रत्नप्रभा का चरित्र अत्यंत मार्मिक और करूणा की मूर्ति है। वह एक सरल -हृदया तथा मधुर स्वभाव की नारी होने से दया, ममता, करूणा, सहानुभूति आदि का दर्शन उसमें होता है। रत्नप्रभा का चरित्र सभी नारी जाति की विवशता को स्पष्ट करता है।

अन्य पात्रोंमें छाया, धाता, वृध्दा आदि का चरित्र घटनाओं तथा प्रसंगो के अनुसार दिखाई देता है, जो उसे सहायक रूपमें स्पष्ट होता है।

पुरूष पात्रोंमे प्रधान "पृथुसेन" का चरित्र एक प्रेमी, वीर योध्दा, और बुध्द भिक्षू के रूपमें व्यक्त हुआ है। उसमें कायर और पलायनकी प्रवृत्ति दिखाई देती है। उसके व्यक्तित्व में दुरदर्शिता और राजनीतिज्ञता का अभाव है।

"रूद्रधीर" अभिजात वर्ग का प्रतीक तथा ब्राह्मण धर्मका प्रतिनिधि है। वह अभिमानी युवक है, उसे राजनिती और कुटनीतीका अच्छा ज्ञान है। रूद्रधीर का चरित्र उपन्यासमें साध्य पक्ष न होकर वर्गवादी मानवताके प्रतिकात्मकता का साधन है।

"मारिशा" का चरित्र उपन्यासमें चार्वाक दर्शन के प्रतिनिधी रूपमें प्रस्तुत हुआ है। भौतिकवादी विचारोंसे चार्वाक दर्शन मार्क्सवादी दर्शन के निकट है। अत: लेखकने अपनी भौतिकवादी मार्क्सवादी विचारधाराको चार्वाकवादी मारिशा के माध्यमसे व्यक्त किया है, जो ऐतिहासिक पृष्टभूमि और देशरक्षा के लिए आवश्यक है।

गौण पुरूष पात्रों में "प्रेस्थ" का चरित्र महत्त्वकांक्षी कुटनीतिज्ञ, चतुर अवसरवादी, धन और पद का लोभी, स्वार्थी, दुरदर्शी आदि सशक्त प्रभावशाली रूपमें व्यक्त हुआ है, जो उपन्यास-में पात्रोंकी दृष्टिसे स्मरणीय पात्र है। "महापंडित देवशर्मा" का चरित्र न्यायी के रूपमें है। "चोबुक" का चरित्र बौध्द भिक्षु के रुपमें व्यक्त हुआ है। प्रतुल भुधार और चक्रधार का चरित्र उस समय के दास व्यवसायी के रूपमें व्यक्त हुआ है।

"उपन्यास में अन्य अनेक पात्र उद्घाटित है। उनमें पात्रता है, चारित्रिकता नहीं, स्पष्टता है, शक्ति नहीं, सामाजिकता है, विस्तार नहीं, स्वाभाविकता है, महत्व नहीं। वे कथाक्रम में अस्वाभाविकता की सृष्टि नहीं करते, फिरभी उनका इतना महत्व पाठक के -हृदयमें नहीं है कि उन्हे स्मरण रखाने को प्रेरित हो।" 45

परंतु लोकायत कर्मी मारिशा सांसारिक जीव होकर भी यशपाल के चारित्रिक शिल्प संगठन के कारण पौरुषता के निर्दोन पुंडरीसा संवेग उपस्थित करता है। दिव्या का सौंदर्य ही उसका पौरुष है और मारिश की पौरुष निर्द्वन्दता ही उसका सौन्दर्य।

अत : यह कहने में संकोच नहीं कि "दिव्या" के नारी तथा पुरुष पात्र अपनी अपनी स्वाभाविकता के साथ चित्रित है। लेखक अपने उद्देश्य में सफल हो चुका है।

पंचम - अध्याय

संदर्भ सूची

१. प्रेमचंद्र - साहित्य का उद्देश पृ. ६०

२. वही -"- पृ. ६०

३. प्रतापनारायण टंडन - उपन्यास कला पृ. १६३

४. वही -"- पृ. १६५

५. प्रकाशचंद्र गुप्त - दिव्या निबंध हंस [पत्रिका] जनवरी १९४६

६. प्रकाशचंद्र मिश्र - यशपाल का कथासाहित्य पृ. ६६

७. यशपाल - दिव्या पृ. ७२

८. प्रकाशचंद्र गुप्त - दिव्या निबंध - हंस[पत्रिका]जनवरी १९४६

९. यशपाल - दिव्या पृ. १३३

१०. वही - दिव्या पृ. १२९

११. वही - दिव्या पृ. १७५

१२. वही - दिव्या पृ. १७६

१३. वही - दिव्या पृ. १७७

१४. वही - दिव्या पृ. १३८

१५. वही - दिव्या पृ. १३९

१६. प्रकाशचंद्र मिश्र - यशपाल का कथा साहित्य पृ. ६३

१७. रत्नाकर पाण्डेय - यशपाल की दिव्या पृ. १२८

१८.	सुदर्शन मल्होत्रा	-	यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन	पृ. १२२
१९.	यशपाल	-	दिव्या	पृ. १८
२०.	वही	-	दिव्या	पृ. १८
२१.	वही	-	दिव्या	पृ. १८, १९
२२.	सुदर्शन मल्होत्रा	-	यशपालके उपन्यासों का मूल्यांकन	पृ. १२३
२३.	प्रकाशचंद्र मिश्र	-	यशपाल के उपन्यासों का मूल्यांकन	पृ. १२३
२५.	प्रकाशचंद्र मिश्र	-	यशपाल का कथा साहित्य	पृ. ६४
२६.	प्रदीप नायक	-	यशपाल का औपन्यासिक शिल्प	पृ. ११८
२७.	रत्नाकर पाण्डेय	-	यशपाल की दिव्या	पृ. १३०, १३१
२८.	यशपाल	-	दिव्या	
२९.	वही	-	दिव्या	पृ. १८
३०.	प्रकाशचंद्र मिश्र	-	यशपाल का कथा साहित्य	पृ. ६५
३१.	यशपाल	-	दिव्या	पृ. १५८
३२.	प्रदीप नायक	-	यशपाल का औपन्यासिक शिल्प	पृ. १२०
३३.	यशपाल	-	दिव्या	पृ. २१७
३४.	रत्नाकर पाण्डेय	-	यशपाल की दिव्या	पृ. १३२
३५.	यशपाल	-	दिव्या	पृ. २८

३६.	यशपाल	-	दिव्या	पृ. ५८
३७.	वही	-	दिव्या	पृ. ५८
३८.	वही	-	दिव्या	पृ. १५८
३९.	वही	-	दिव्या	पृ. १५९, ६०
४०.	वही	-	दिव्या	पृ. २१८
४१.	प्रकाशचंद्र मिश्र	-	यशपाल का कथा साहित्य	पृ. ६३
४२.	स्नेहलता शर्मा	-	यशपाल के उपन्यास	पृ. ८०
४३.	यशपाल	-	दिव्या	पृ. ६०
४४.	वही	-	दिव्या	पृ. ८७, ८८
४५.	रत्नाकर पाण्डेय	-	यशपाल की दिव्या	पृ. १३४, ३५